Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

व्याकरणशास्त्र में तिङ्न्त के प्राविधिक शब्दों का विवेचन

डॉ. सुभाषचन्द्र मीणा
सहायकाचार्य (व्याकरण विभाग)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
क. जे. सोमैया परिसर, मुम्बई।

प्रबन्धसार (Abstract) - व्याकरण शास्त्र में तिङ्न्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है, इनके बिना शब्द एवं धातु से बनने वालेपदों का निर्माण संभव नहीं है। तिङ् प्रत्यय अनेक धातु एवं शब्दों के साथ जुड़कर क्रियापदों के रुप में बनते है। क्रियापदो के निर्माण के क्रम में मूल धातुओं के साथ जुड़नेवाले ये 'तिप्' आदि कुल 18 प्रत्यय हैं। इनमें प्रारंभ में 'तिप्' प्रत्यय है और अन्त में 'महिङ्' प्रत्यय है। इन अठ्ठारह प्रत्ययों को एक साथ बनाने वाले सूत्र के रुप में पहले प्रत्यय 'तिप्' का 'ति' ले लिया गया और अन्तिम (18वे) प्रत्यय 'महिङ्' का 'ङ्' और दोनों मिलकर 'तिङ्' प्रत्यय का बोध कराते हैं।[1]ये 'तिङ्' प्रत्यय मूल धातु के साथ जुड़ते हैं, अतः इनसे बने पदों को 'तिङ्न्त' कहते हैं। प्रकरण अध्याय को कहते हैं। तिङ्न्त प्रकरण में इस बात पर विचार किया गया है कि मूल धातुओं में इन प्रत्ययों के लगने से बने क्रियापदों का 'पुरुष' 'वचन' और 'काल' की दृष्टि मे रुप और अर्थ होता है। साह ही यहाँ परस्मैपद, आत्मनेपद, क्रियाफल आदि तकनीकी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। जिसमें तिबादि आदेशवाले परस्मैपदी होते है। तङ् आदेश वाले प्रत्यय आत्मनेपदी होते हैं। क्रिया को सम्पादित करने वाले क्रियाफल कहलाते हैं। तिङ् एवंशित् से भिन्न प्रत्यय आर्धधातुक कहलाते हैं। किसी भी पद को द्वित्व होनेपर पूर्वमाला पद अभ्यास संज्ञक कहलाता है। अनद्यतन अर्थ में लिङ् तथा परोक्ष में लिट् लकार का विधान किया गया है। उपर्युक्त प्राविधिक पदों में पाणिनि, जैनेन्द्र, पतञ्जलि तथा भट्टोजिदीक्षित ने भिन्न-भिन्न व्याख्या की है, अतः यहाँ तिङ्न्त प्रकरण में विभिन्न प्राविधिक शब्दों को स्पष्ट किया है।

सारतत्त्व (Keyword) - परस्मैपद, आत्मनेपद, अनुदात्तेत्, कर्त्रभिप्राय, क्रियाफल, आर्धधातुक, अभ्यास, अनद्यतन, परोक्षेलिट्, आमन्त्रण, अतिपत्ति अनुप्रयोग, इदित्, अत्वत्, अदादी, ऋदित्।

जब हम किसी धातु से कोई लकार जोड़ते हैं तब उस लकार का लोप हो जाता है और उसके स्थान पर उठ्ठारह प्रत्ययों का प्रयोग होता है। इन प्रत्ययों को संक्षेप में तिङ् कहा जाता है। इन उठ्ठारह प्रत्ययों के आरम्भिक नौ प्रत्यय 'परस्मैपद' और अन्तिम नौ प्रत्यय 'आत्मनेपद' कहलाते हैं। संस्कृत के सभी शब्दों का मूल धातू को ही माना जाता है। अतः व्याकरण शास्त्र का यह एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण है। इस प्रकरण में सूत्रो के अनेक प्राविधिक (तकनीकी) शब्दों का उपादान किया गया है। तिङ्न्त

को सरलरुप से समझने के लिए इसके प्राविधिक (पारिभाषिक) शब्दों को समझना या ज्ञान आवश्यक है। अतः यहाँ इन्हीं प्राविधिक शब्दों का क्रमशः विवेचन किया जा रहा है।

परस्मैपद –व्याकरण शास्त्र में परमस्पैद संज्ञा विधायक सूत्र 'लः परस्मैपदम्'[2] है। यह सूत्र लकार के स्थान पर होने वाले तिबादि आदेशों की परस्मैपद संज्ञा करता है। शेषात् कर्तीरि परस्मैपदम् इस सूत्र द्वारा परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों का विधान किया जाता है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद प्रयोग होने लगेगा। परस्मैपद में 'परस्मै' का अर्थ है दूसरों के लिए अर्थात् जब किसी भी क्रिया का फल करने वाले को न मिलकर दूसरे ही व्यक्ति को मिले तो वहाँ परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय होता हैं ।

आत्मनेपद - 'आत्मनेपद' शब्द का अर्थ – तङ् प्रत्ययों के लिए पारिभाषिक पद है तथा शानच, चानश, शानन्, कानच् प्रत्ययों के लिए भी। पाणिनि ने 'आत्मनेपद' के लिए 'तङानावात्मनेपदम्' इस सूत्र का उपादान किया है। धातु से विहित लकार के स्थान में होने वाले 'तङ्' तथा 'आन्' प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा होती है। 'आन्' यहाँ पर निरनुबन्धक पाठ है। 'निरनुबन्धकाग्रहणे सानुबन्धस्य' अर्थात् यदि निरनुबन्धक का ग्रहण किया जाता है तो सभी प्रकार के अनुबन्धयुक्त का ग्रहण इष्ट होता है। इस परिभाषा के द्वारा ही शानच्, कानच्, चानश् का ग्रहण हुआ है।

अनुदात्तेत्- जिनका इत् संज्ञक वर्ण अनुदात्त स्वर में उच्चरित होता है वह 'अनुदात्तेत' कहलाता है।

'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्'[3] सूत्र से जिसका अनुदात्त इत् हो या जिसका ङकार इत् हो, उस से परे लकार के स्थान पर आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होता है। धातु पाठ में प्रयोजनवशात् उदात्त, अनुदात्त व स्वरित स्वर जोड़े गये है। अनुनासिक होने से इत् संज्ञक होते है। जिस धातु का अनुदात्त स्वर इत् होता है, वह अनुदात्तेत् कहलाता है। इस प्रकार की धातुओं के लिए प्रयुक्त पद है अनुदात्तेत्। जिनका इत् वर्ण अनुदात्त हो ऐसी धातुओं के लिए प्रयुक्त पद है अनुदात्तेत्। जिनका इत् वर्ण अनुदात्त हो ऐसी धातुओं की प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये धातुयें मात्र आत्मनेपद प्रत्ययों को ग्रहण करतीं है जैसे – एधते, आस्ते। अनुदात्त इत् वाली धातुओं से पाणिनि ने 'स्वभाव अर्थ' में 'युच्' प्रत्यय का विधान किया है।

यथा – वर्धनः, वर्त्तनः आदि। लेकिन इस प्रकार के शब्द निर्माण में धातु का प्रथम वर्ण व्यञ्जन होना अपेक्षित है।

'अनुदात्तेतश्च हलादेः' सूत्र से तच्छिलादि कर्ता अर्थ में वर्त्तमान काल में 'अनुदात्तेत्' अर्थात् जिसका अनुदात्त युक्त अच् इत् है, हलादि तथा अकर्मक धातु से 'युच्' प्रत्यय होता है। 'अनुदात्तेत्' का अभिप्राय है कि अनुदात्तयुक्त अच् इत् है।

कर्त्रभिप्राय- 'कर्त्रभिप्राय' पद का शाब्दिक अर्थ है कि कर्तारमाभिप्रैतीति कर्त्रभिप्रायः अर्थात् किसी क्रिया के कर्त्ता के लिए अभीष्ट। प्रस्तुत शब्द का प्रयोग किसी क्रिया के फल के सन्दर्भ में किया जाता है, जब फल कर्तृगामी हो तब स्वरित तथा ञित् धातुओं से आत्मनेपद का प्रयोग होता है। पाणिनि ने 'कर्त्रभिप्राय' पद का प्रयोग 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' सूत्र में किया है।

जब क्रिया का फल कर्त्ता के अतिरिक्त व्यक्ति को प्राप्त हो तो उसे परगामी क्रिया फल कहते है। 'कर्तारम् अभिप्रैति गच्छतीति कर्त्रभिप्रायः' जो कर्त्ता को प्राप्त होता है। जिस अभिप्राय से कोई क्रिया आरम्भ की जाती है वह उस क्रिया का फल कहलाती है। जिस धातु में स्वरित् स्वर इत् है तथा ञकारवर्ण इत् है उससे आत्मनेपद होता है क्रिया फल के 'कर्तृगामी' होने पर। यथा – अहं करिष्ये। यहाँ यजमान के लिए यज्ञ या जप उद्दिष्ट होने पर पुरोहित यजमान से करिष्ये का उच्चारण करवाता है।

क्रियाफल- 'क्रियाफल' शब्द का शाब्दिक अर्थ – किसी क्रिया को सम्पादित करने से प्राप्त फल ही क्रियाफल कहलाता है।

पाणिनीय व्याकरण में 'क्रियाफल' शब्द का प्रयोग 'स्वरितञित् कर्त्रभिप्राये क्रियाफले'[4] सूत्र में किया है। यहाँ 'क्रियाफल' का शाब्दिक अर्थ – जिस अभिप्राय से कोई क्रिया आरम्भ की जाती है वह उस क्रिया का फल कहलाता है। क्रिया का फल दो प्रकार का होता है क्रमशः – कर्तृगामी तथा परगामी। जब क्रिया का फल कर्त्ता से अतिरिक्त व्यक्ति को प्राप्त हो तो

उसे परगामी क्रियाफल कहते है। जब कोई पुरोहित अपने यजमान के लिए यज्ञ आदि कार्य करता है तो उसका फल परगामी होता है। परगामी क्रिया का भाव यह है कि – उस यज्ञ का फल कर्त्ता को प्राप्त न होकर उससे भिन्न यजमान को प्राप्त होता है। यह प्रक्रिया परगामी कहलाती है। तथा जब क्रिया का फल स्वयं कर्ता को प्राप्त होता है तो उसे कर्तृगामी क्रिया फल कहते है। यथा – रामः ओदनं पचति। - 'परगामी क्रियाफल'। अहं शये – 'कर्तृगामी क्रियाफल'

आर्धधातुक- 'आर्धधातुक' शब्द सार्वधातुक के प्रतिद्वन्द्वि के रुप में प्रयोग किया जाने वाला पद है। तिङ् एवं शित् इन सार्वधातुक प्रत्ययों से भिन्न प्रत्यय 'आर्धधातुक' कहलाते हैं। पाणिनि ने 'आर्धधातुक' पद का प्रयोग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से निम्न सूत्रों में किया है क्रमशः –

'तिङ्शित्सार्वधातुकम्'[5] इस सूत्र से धातु के अधिकार में पठित तिङ् व शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तिप् से लेकर महिङ् के 'ङ्' पर्यन्त तिङ् प्रत्याहार बनता है। अतः 'तिङ्' का अर्थ है – तिप् आदि 18 प्रत्यय तथा जिनका 'श्' इत् संज्ञक है उसे शित् कहते हैं।

'आर्धधातुकं शेषः' इस सूत्र से तिङ् व शित् के अतिरिक्त प्रत्यय जो धात्वधिकार में पठित हैं उनकी आर्धधातुक संज्ञा होती है। तृच्, तुमुन्, तव्यत् आदि प्रत्ययों की आर्धधातुक संज्ञा होती है। यथा – कर्त्ता, पठिता, पठितुम्।

'लिट् च' सूत्र से लिट् के स्थान पर विहित तिङ् आदेश की आर्धधातुक संज्ञा होती है। यथा – पेचिथ, जग्ले।

'लिङाशिषि' सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में 'लिङ्' के स्थान पर विहित तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है यथा – भूयात्। 'छन्दस्युभयथा' सूत्र से वैदिक साहित्य में सार्वधातुक व आर्धधातुक दोनों संज्ञायें होती है। वेद में आर्धधातुक के स्थान पर सार्वधातुक तथा सार्वधातुक के स्थान पर आर्धधातुक संज्ञा देखी जाती है। यथा – ततन्वान्, आभुवत्, आरुहेम, वर्धन्तु, उपस्थेयाम इत्यादि।

आर्धधातुकस्येड्वलादेः सूत्र से अंग संज्ञक शब्द से उत्तर वलादि आर्धधातुक को इट् का आगम होता है। यकार को छोड़कर सभी व्यञ्जन वल् प्रत्याहार में आ जाते हैं। आर्धधातुक संज्ञा का प्रमुख फल ऐसे प्रत्ययों से पूर्व इट् का आगम है। यथा – लविता।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भाष्य में 'आर्धधातुक'[6] प्रत्यय का प्रयोग करते हुए कहा है कि – 'अथवा आर्धधातुकासु इति वक्ष्यामि कासु आर्धधातुकासु। उक्तिषु युक्तिषु रुढिषु प्रतीतिषु श्रुतिषु संज्ञाषु'।

एकाच्- 'एकस्वर / एकाच्' पद का शाब्दिक अर्थ है – जिसमें एक स्वर हो या एक स्वर वाला हो या जिसमें मात्र एक अच् हो, उसे हम एकस्वर / एकाच् कहते है। पाणिनि ने 'एकाच्' या एकस्वर पद का प्रयोग 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' सूत्र में किया है। यह एक अधिकार सूत्र है। इसके अधिकार में लिट् के परे होने पर अनभ्यास धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है। यथा – पपाच (पच् पच्, अ), पपात, शशीके, वव्रश्चुः, आजुघुर्णुः।

हेमचन्द्र ने 'शब्दानुशासन' के 'आद्योंश एकस्वरे' सूत्र में 'एकस्वर' पारिभाषिक पद का प्रयोग किया है।

अभ्यास- अभ्यास शब्द का अर्थ है – किसी भी पद को द्वित्व होने पर पूर्व वाला पद अभ्यास संज्ञक होता है।

'पूर्वोऽभ्यासः'- सूत्र में पाणिनि ने 'अभ्यास' पद का प्रयोग किया है। इस सूत्र में 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' सूत्र से 'द्वे' इस पद की अनुवृत्ति होती है तथा 'द्वे' पद को विभक्तिविपरिणाम के द्वारा षष्ठयन्त बना लिया जाता है।

'अभ्यास' पद का प्रयोग वैदिककालीन ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्य में भी मिलता है। 'दोऽभ्यासे' यहाँ अभ्यास से तात्पर्य आवृत्ति, जिसका दूसरा भाग आवृत्त किया जाता है 'अभ्यास' कहलाता है। यथा – दकारः अभ्यासे लुप्यते। पटत्पटेति। द्रसद् द्रसेति। काशिकाकार ने भी 'अभ्यास' पद का प्रयोग किया है 'अभ्यासः' पुनः पुनः करणमावृत्तिः।

अनद्यतन- समय का वह भाग जो आज से सम्बन्धित न हो या वर्तमान से सम्बन्धित न हो, विगत समय के सम्बन्ध में प्रयोग में लाया जाने वाला, सामान्यतया अपूर्ण के सम्बन्ध में प्रयुज्यमान, निकटवर्ती भविष्यत् काल के सम्बन्ध में भी प्रयोग में लाया जाने वाला पारिभाषिक पद 'अनद्यतन' कहलाता है। 'अनद्यतन' शब्द का प्रयोग पाणिनि ने निम्न सूत्रों में किया है क्रमशः –
'अनद्यतने लङ्'[7] 'अनद्यतने लङ्' सूत्र में अनद्यतन शब्द का अर्थ है जो आज घटित न हुआ है। अतः अद्यतन, व्यामिश्र, सामान्य भूत तथा आतिदेशिक भूतवत् काल अर्थ में लङ् न होगा।। जिसमें अद्यतन विद्यमान हीं है उसे अनद्यतन कहते है। अनद्यतन दो प्रकार का होता है – परोक्ष एवं अपरोक्ष। परोक्ष अनद्यतन में लिट् होता है तथा अपरोक्ष अनद्यतन में लङ् होता है। अनद्यतन भूतकाल में वर्तमान धातु से लङ् प्रत्यय होता है। यथा – अगच्छत्।

'परोक्षे लिट्'[8]

'अनद्यतन' शब्द का प्रयोग पाणिनि ने इस सूत्र में दिया है। इस सूत्र में 'अनद्यतने लुट्' सूत्र से 'अनद्यतने' की अनुवृत्ति आती है। जो कि अप्रत्यक्ष रुप से प्रयोग हुआ है। अनद्यतन परोक्ष भूतकाल अर्थ में धातु से लिट् प्रत्यय होता है। अनद्यतन भूतकाल पाँच प्रकार का होता है।

1. अद्यतन
2. अनद्यतन
3. व्यामिश्र
4. सामान्य
5. भविष्यविषयक

'अनद्यतने लृट्'- इस सूत्र से 'अनद्यतन भविष्यत्' काल में लृट प्रत्यय होता है।

'नाऽनद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः'

क्रियाप्रबन्ध तथा सामीप्य के वाच्य होने पर धातु से अनद्यतन की तरह प्रत्यय विधि नहीं होती है। निरन्तर क्रिया के अनुष्ठान को प्रबन्ध कहते है। यहाँ भूत 'अनद्यतन' में लङ् तथा भविष्यत् 'अनद्यतन' में लुट् प्राप्त था।

'अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्'

इस सूत्र से अनद्यतन काल अर्थ में वर्तमान होनें पर किम् सर्वनाम तथा बहु प्रातिपदिकों से विकल्प से र्हिल् प्रत्यय होता है। यथा – कस्मिन् अनद्यतने काले, किम् र्हिल = कर्हि।

आमन्त्रण- 'आमन्त्रण' शब्द का अर्थ – एक निवेदन जो स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जा सकता है। पाणिनि ने 'आमन्त्रण' शब्द का प्रयोग 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नाप्रार्थनेषु लिङ्'[9] सूत्र में किया है। विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, साप्रश्न तथा प्रार्थना इन अर्थो में धातु से लिङ् लकार होता है। 'आमन्त्रण' का प्रयोजन – इसमें कामचारिता होती है अर्थात् कार्य में प्रवृत्त होना या न होना कर्त्ता पर निर्भर करता है। यथा - अद्य मम गेहे विश्राम्येत् (आज आप मेरे यहाँ विश्राम करे) यहाँ पर कामचारिता है। 'आमन्त्रण' शब्द पर महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भाष्य में कहा है कि 'अथ निमन्त्रणम्। नैषोऽस्ति विशेषः। असन्निहितेनापि निमन्त्रणं भवति सन्निहितेनापि आमन्त्रणम्। एवं तर्हि यन्नियोगतः कर्त्तव्यं तन्निमन्त्रणम्। आमन्त्रणे कामचारः।'

अतिपत्ति- किसी भी सम्भावना का अभाव अतिपति कहलाता है। पाणिनि ने अतिपत्ति शब्द का प्रयोग 'लिङ्निमिते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र में किया है। क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर लिङ् का निमित्त होने पर भविष्यत् काल में धातु से लृङ् लकार होता है। 'अतिपत्ति' का अर्थ – उल्लंघन या असिद्धि अर्थात् सूत्रोक्त क्रिया की असिद्धि होने पर है।

आनि- लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन का प्रत्यय नि तथा उसमें पहले 'आ' लगाकर 'आनि' बन जाता है जिसका नकार णकार में परिवर्त्तित हो जाता है। पाणिनि ने 'आनि' पद का प्रयोग 'आनि लोट्' सूत्र में किया है। संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ अथवा षकार से उत्तम पुरुष लोट् लकार के स्थान पर विधीयमान जो आदेश 'आनि' उसके नकार को णकार होता है। यथा – प्रभवाणि।

अपित्- 'अपित्' शब्द से आशय है कि जिसका प् इत् सं5क न हो। ऐसा सार्वधातुक जो पित् न हो वह ङित् के समान माना जाता है और इस कारण अपने से पूर्ववर्त्ती स्वर अथवा उपधा में विद्यमान स्वर को गुण थवा वृद्धि का निषेध होता है।

'सार्वधातुकमपित्' सूत्र में अपित् शब्द का प्रयोग हुआ है। 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' सूत्र के द्वारा तिङ् व शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तिप् से लेकर महिङ् पर्यन्त 18 प्रत्यय तिङ् प्रत्यय कहलाते है। शप्, श्यन्, शतृ व शानच् आदि शित् प्रत्यय कहलाते है। पित् भिन्न सार्वधातुक संज्ञक प्रत्यय ङिद्वत् होते है। यथा – कुरुतः तनुतः उपरोक्त उदाहरणों में 'उ' स्वर को गुण नहीं होता है।

इच्- आकार को छोड़कर सभी स्वरों का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रत्याहार 'इच्' कहलाता है। पाणिनि ने 'इच्' शब्द का प्रयोग 'इजादेश्चगुरुमतोऽनृच्छः'[10] सूत्र में किया है। इस सूत्र से इजादि तथा गुरुमान् धातु से पर 'आम्' प्रत्यय होता है। यदाँ इजादि का अर्थ – इच् है आदि में जिसके अर्थात् इ, उ, ऋ, लृ, ए, औ, ऐ, ओ वर्णों से प्रारम्भ होने वाले धातु को 'इजादि' कहते है। यहाँ 'इजादेः' का प्रयोजन है कि इजादि धातु से उक्त प्रत्यय होता है। यथा – एधाञ्चक्रे, ईहाञ्चक्रे, एजाञ्चक्रे।

'वा च्छन्दसि' सूत्र से वेद के विषय में दीर्घ वर्ण से उत्तर 'इच्' वर्ण या जस् प्रत्यय रहने पर विकल्प से पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश का निषेध होता है संहिता के विषय में। यथा – मारुतीः, वाराही।

'एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च'[11] सूत्र में भी 'इच् ' पद का पाणिनि ने ग्रहण किया है। खिदन्त उत्तरपद परे रहते इजन्त एकाच् शब्द को अम् आगम् होता है और वह अम् आगम स्वादि अम् प्रत्यय के समान होता है। यहाँ 'इचः' का प्रयोजन इजन्त शब्द को ही अम् आगम होना है। यथा – गाम्मन्यः, नरमन्यः।

'हलश्चेजुपधात्' सूत्र में भी 'इच्' पद का प्रयोग हुआ है। संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ वकार से उत्तर इजुपध जो हलादि धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय, उस कृत् प्रत्यय में स्थित अच् से उत्तर नकार को विकल्प से वकार होता है। यहाँ 'इजुपधात्' का प्रयोजन 'इच्' वर्ण है उपधा में जिसके ऐसे धातु से विहित कृत् ने नकार को णकार होता है। यथा – प्रकोपणम्, परिकोपणम्।

'इजादेश्च सनुमः' सूत्र में 'इच्' का ग्रहण किया गया है। संहिता के विषय में उपसर्ग में स्थित रेफ या षकार से उत्तर इजादि नुम् सहित हलन्त जो धातु उससे विहित जो कृत् प्रत्यय, उस कृत् प्रत्यय में स्थित अच् से उत्तर जो नकार, उसे णकार होता है। यथा – प्रेङ्खणम्।

'इच् कर्मव्यतिहारे' सूत्र में भी 'इच्' का प्रयोग हुआ है। बहुव्रीहि समास में कर्मव्यतिहार वाच्य हो तो 'इच्' समासान्त होता है। इच् के चकार की इत् संज्ञा होती है। यथा – केशाकेशि (केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् दण्डादण्डि (दण्डैश्च दण्ड़ैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम्)

' द्विदण्ड्यादिभ्यश्च' सूत्र में द्विदण्डि आदि गण में पठित शब्द इच प्रत्ययान्त निपातित है। यथा – द्विदण्डि, द्विमुसलि।

इदित्- 'इदित्' शब्द का अर्थ 'इ' इत्संज्ञक वर्ण सो जो युक्त है। पाणिनि ने 'इदितो नुम् धातोः'[12] सूत्र में 'इदित्' पद का प्रयोग किया है। 'इदित्' धातुओं को 'नुम्' का आगम होता है। जिसका ह्स्व इकार इत् होता है, उसे इदित् कहते हैं। यथा – जुगुञ्ज

अनुप्रयोग- 'अनुप्रयोग' शब्द एक पारिभाषिक शब्द है। 'अनुप्रयोग' का अर्थ एक पद के प्रयोग के बाद पुनः किसी पद का प्रयोग करना है।

'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' सूत्र से तात्पर्य आम् प्रत्यय के पश्चात् कृञ् का भी प्रयोग किया जाता है लिट् प्रत्यय परे रहते। यहाँ सूत्र में 'अनुप्रयुज्यते' पद का 'अनु-प्रयुज्यते' इस प्रकार पदच्छेद दर्शाया है। यहाँ 'अनु' में लुप्त प्रथमा हैं। अनु से तात्पर्य – पश्चात् तथा प्र से तात्पर्य – प्रकर्ष या व्यवधान रहित। फलतः 'कृ' आदि का अनुप्रयोग आमन्त के पश्चात् होगा। वह आमन्त से अव्यवहित होगा अर्थात् आमन्त समुदाय और अनुप्रयोग के मध्य कोई व्यवधान न हो। यथा – पाचयाञ्चकार, पाचयाम्बभूव।

'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य' इस सूत्र से आम् प्रकृति क धातु से अनुप्रयोग की जाने वाली कृ धातु से भी आत्मनेपद ही होता है। एधाम्बभूव, एवं एधाञ्चकार आदि रुप बनाये जाते हैं। इन प्रयोगों में ये धातुयें अनुप्रयोग की दशा में है।

'यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन्' सूत्र से जिस धातु से लोट् का विधान हुआ है उसी धातु का अनुप्रयोग होता है। यथा – 'लुनाति' यह अनुप्रयोग में 'लू' धातु का प्रयोग हुआ है। यहाँ 'छिनत्ति' आदि अनुप्रयोग नहीं हो सकते।

असंयोग- 'असंयोग' शब्द का अर्थ – दो या दो से अधिक व्यञ्जनों के मेल के भाव को 'असंयोग' कहते है। पाणिनि ने 'असंयोग' शब्द का 'असंयोगाल्लिट् कित्' सूत्र में प्रयोग किया है। संयोग जिसके अन्त में न हो ऐसी धातु से परे पित् भिन्न लिट् प्रत्यय किद्वत् होता है। सूत्र में 'असंयोगात्' इसलिए कहा गया कि, दध्वंसे, बभ्रंसे तथा सस्रम्भे में लिट् स्थानिक 'ए' प्रत्यय कित् न हो। यथा – बिभिदतुः चिच्छिदतुः ईजतुः।

अत्वत्- 'अत्वत्' की व्युत्पत्ति – अत् अस्य अस्मिन् वा अस्तीति अत्वान्, तस्य अत्वतः। किसी में ह्रस्व 'अ' स्वर का होना। पाणिनि ने इस पद का प्रयोग अष्टाध्यायी के 'उपदेशेऽत्वतः' सूत्र में किया है। इस सूत्र से ह्रस्व अकारवान् धातु से उत्तर 'थल्' को इट् का निषेध होता है। 'अत्वतः' में तपकरण का प्रयोजन है कि ह्रस्व अकारवान् जो धातु उससे पर थल को इट् निषेध हो दीर्घ अकारवान् को न हो।

लृदित्- 'लृदित्' शब्द का अर्थ – ऐसी धातुयें जिनका लृ वर्ण इत् संज्ञक हो उसे 'लृदित्' कहते हां। पाणिनि ने 'लृदित्' पद का प्रयोग 'पुषादिद्युताद्यलृदितः परस्मैपदेषु' सूत्र में किया है। पुष् आदि दैवादिक धातुओं, द्युत् धातु तथा 'लृदित्' धातुओं से पर च्लि को 'अङ्' आदेश होता है परस्मैपद प्रत्यय परे रहते। यथा – अपुषत् (पुष्, अङ् ल) अशकत्।

अदादि - पाणिनीय धातु पाठ के द्वितीय गण में पठित धातुओं का संग्रह जिनमें प्रथम धातु 'अद्' है। इसका उल्लेख पाणिनि के सूत्र 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः'[13] में मिलता है। यह सूत्र अदादि की धातुओं से परे 'शप्' का लुक् करता है। 'अदि-प्रभृति' पद भी इसी अर्थ को व्यक्त करता है। 'अदाद्यनदाद्योरनदादेरेव' यह परिभाषा भी हेमचन्द्र के द्वारा कथित है जिसमें अदादि का उल्लेख है।

कुटादि- पाणिनीय व्याकरण में धातुओं का एक समूह, जिसके आरम्भ में कुट् धातु हो वह 'कुटादि' कहलाता है। पाणिनि ने 'कुटादि' शब्द का प्रयोग 'गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित्'[14] सूत्र में किया है। गाङ् आदेश तथा कुटादि धातुओं से परे ञित् व णित् से भिन्न प्रत्यय ङिद्वत् होते हैं। यहाँ 'कुटादि' का अर्थ – कुटादिगण में पठित धातु इस गण में 'कुट कौटिल्य' से लेकर 'कुङ्' शब्दे तक 36 धातुओं का पाठ है। यथा – अध्यगीष्ट (अधि+इङ्+तिप्), कुटिता, कुटितुम्।

इम्- पाणिनि ने 'इम्' को आगम के रुप में प्रयुक्त किया है। 'तृणह इम्' सूत्र में पाणिनि ने 'इम्' पद का प्रयोग किया है। अन्तिम स्वर के बाद तृणह् से लगाया जाने वाला आगम 'इम्' है। हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते 'तृह' धातु से 'श्नम्' कर चुकने के पश्चात् 'इम्' आगम होता है। 'इम्' के मकार की इत् संज्ञा होती है। यथा – तृणेढि (तृह् इम् तिप्)

'तासामाप्परात्तद्धल च'[15] इस सूत्र में पारिभाषिक पदों में ईप, का, ता, भा, वा का पाठ है, जिन्हें जैनेन्द्र व्याकरण में पाणिनि की सप्तमी, पञ्चमी, षष्ठी और प्रथमा विभक्ति के लिए प्रयोग किया गया है।

ऊठ्- 'ऊठ्' का प्रयोग आगम एवं सम्प्रसारण के रुप में हुआ। 'ऊठ्' शब्द का प्रयोग पाणिनि ने 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' सूत्र में किया है। अनुनासिकादि प्रत्यय परे रहते अथवा क्वि या झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते तुक् सहित वकार के स्थान पर 'ऊठ्' आदेश होता है। 'ऊठ्' के ठकार की इत् संज्ञा होती है। यथा – पृष्टः (प्रच्छ क्त), स्योनः (सिव् न)

पाणिनि ने 'वाह ऊठ्'[16] सूत्र में 'ऊठ्' पद का प्रयोग किया है। भ संज्ञक 'वाह्' के स्थान पर 'ऊठ्' आदेश होता है। तथा 'ऊठ्' की सम्प्रसारण संज्ञा भी होती है। यथा – विश्वौहः (विश्वाह् शस्)

'एत्येधत्यूठ्सु'[17] सूत्र में भी ऊठ् पद का प्रयोग हुआ है। अ वर्ण से परे एजादि 'इण्' तथा एध् धातु हो या 'ऊठ्' हो तो पूर्व व पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश होता है। यथा – प्रष्ठौहः (प्रष्ठ ऊहः)

ऋदित्- 'ऋदित्' का शाब्दिक अर्थ – जिसमें ह्स्व ऋकार की इत् संज्ञा होती है। पाणिनि ने 'ऋदित्' पद का प्रयोग 'नाग्लोपिशास्वृदिताम्' सूत्र में किया है। णिच् के परे अक् का लोप हुआ ऐसा धातु, शास् धातु तथा 'ऋदित्' धातु की उपधा को ह्स्व नहीं होता है, चङ्परक णि के परे रहते। पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में इस प्रकार की धातुओं को चङ्परक णि परे होने पर उपधा को ह्स्व नहीं होता है। यथा - अलुलोकत्

इस प्रकार तिङ्न्त प्रकरण में प्रयुक्त प्राविधिक (पारिभाषिक) शब्दों की व्याख्या संक्षिप्त रुप से की गई है, जिससे तिङ्न्तप्रकरण को समझने में सरलता होगी साथ ही व्याकरण शास्त्र जैसे जटिल विषय को उद्घाटित किया जा सकता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची –

1. अष्टाध्यायी तिङ्न्त
2. पाणिनि सूत्र 1-3-78
3. अष्टाध्यायी 1-3-12
4. अष्टाध्यायी
5. पाणिनिनसूत्र 3-4-113
6. व्याकरणमहाभाष्ये
7. पाणिनिसूत्र 3 / 2 / 115
8. अष्टाध्यायी 3 / 2 / 115
9. अष्टाध्यायी 3 / 3 / 116
10. सिद्धान्तकौमुदी 3-1-35
11. पाणिनिसूत्र
12. पाणिनिसूत्र
13. अष्टाध्यायी 2-4-72
14. अष्टाध्यायी 1-2-1
15. जैनेन्द्र व्याकरण 1-11-158
16. अष्टाध्यायी 6-4-132
17. पाणिनिसूत्र 6-1-89